अनुकम....

तेज पुञ्ज

इस संसार में सज्जनों, सत्पुरुषों और संतों को जितना सहन करना पड़ता है उतना दुष्टों को नहीं। ऐसा मालूम होता है कि इस संसार ने सत्य और सत्त्व को संघर्ष में लाने का मानो ठेका ले रखा है। यदि ऐसा न होता तो गाँधी को गोलियाँ नहीं खानी पड़ती, ईसामसीह को शूली पर न लटकना पड़ता, दयानन्द को जहर न दिया जाता और लिंकन व कैनेडी की हत्या न होती।

इस संसार का कोई विचित्र रवैया है, रिवाज प्रतीत होता है कि इसका अज्ञान-अँधकार मिटाने के लिए जो अपने आपको जलाकर प्रकाश देता है, संसार की आँधियाँ उस प्रकाश को बुझाने के लिए दौड़ पड़ती हैं। टीका, टिप्पणी, निन्दा, गलच चर्चाएँ और अन्यायी व्यवहार की आँधी चारों ओर से उस पर टूट पड़ती है।

सत्पुरुषों की स्वस्थता ऐसी विलक्षण होती है कि इन सभी बवंडरों (चक्रवातों) का प्रभाव उन पर नहीं पड़ता। जिस प्रकार सच्चे सोने को किसी भी आग की भट्ठी का डर नहीं होता उसी प्रकार संतजन भी संसार के ऐसे कुव्यवहारों से नहीं डरते। लेकिन उन संतों के प्रशंसकों, स्वजनों, मित्रों, भक्तों और सेवकों को इन अधम व्यवहारों से बहुत दुःख होता है।

महापुरुष के मन में कदाचित् कोई प्रतिकार पैदा हो तो यही कि: "हे दुनिया! तेरी भलाई के लिए हम यहाँ आए थे, किन्तु तू हमें पहचान न सकी। यहाँ आने का हमारा कोई दूसरा प्रयोजन नहीं था। हमने तो तेरे कल्याण के लिए ही देह धारण की और तूने हमारी ही अवहेलना की, अनादर किया? हमें तुझसे कुछ लेना नहीं था। हम तो तुझे प्रेम से अमृत देने के लिए बैठे थे। तूने उसका अनादर किया और हमारे सामने विष वमन करना शुरु किया। खैर तेरा रास्ता तुझे मुबारक और हम अपने आप में मस्त।

अन्धकार, जिसका वास्तव में कोई अस्तित्व नहीं होता, अकारण ही प्रकाश की निन्दा करता है। मनुष्य की प्रकृति में यह अन्धकार अज्ञान और जड़ता के रूप में स्थित है। यह जब अपना जौहर दिखाता है तब हैरानी परेशानी पैदा कर देता है उसे नष्ट करना और परम दिव्यता के प्रकाश की आराधना करना इसी का नाम ही साधना है। सभी संत विभिन्न रूप में हमें इस साधना के मार्ग की ओर ले जाते हैं। घाटी का ऊबड़खाबड़ रास्ता छोड़कर हम परम दिव्यता के प्रकाशित पथ पर अग्रसर बनें ऐसी प्रार्थना के साथ.....

(अनुक्रम)

गहन अन्धकार से प्रभु!

परम प्रकाश की ओर ले चल.....

एक बार तथागत बुद्ध भगवान के पास आकर उनके शिष्य सुभद्र ने निवेदन किया: "प्रभु! अब हमें यात्रा में न भेजें। अब मैं स्थानिक संघ में रहकर ही भिक्षुओं की सेवा करना चाहता हूँ।"

बुद्धः "क्यों? क्या तुम्हें यात्रा में कोई कटु अनुभव हुआ?"

सुभद्रः "हाँ, यात्रा में मैंने लोगों को तथागत की तथा धर्मगत की खूब निन्दा करते हुए सुना। वे ऐसी टीकाएँ करते हैं कि उसे सुना नहीं जा सकता।"

बुद्धः "क्या इसीलिए तुमने यात्रा में न जाने का निर्णय लिया है?"

सुभद्रः "निन्दा सुनने की अपेक्षा यहाँ बैठे रहना क्या बुरा है?"

बुद्धः "निन्दा एक ऐसी ज्वाला है, जो जगत के किसी भी महापुरुष को स्पर्श किये बिना नहीं रहती तो उससे तथागत भला कैसे छूट सकते हैं?

जैसे सूर्य का स्वभाव प्रकाश एवं जल का स्वभाव शीतलता है वैसे ही संत का स्वभाव करुणा और परहितपरायणता होता है। हमें अपना स्वभाव नहीं छोड़ना चाहिए। शास्त्र कहते हैं कि

निन्दक जिसकी निन्दा करता है उसके पापों का भी वह भागीदार बन जाता है अतैव हमें तो मात्र अपने धर्म में ही दृढ़ता रखनी चाहिए।"

जिस तथागत के हृदय में सारे संसार के लिए प्रेम और करुणा का सरोवर छलकता था उनकी भी निन्दा करने में दुष्ट निन्दकों ने कुछ बाकी नहीं छोड़ा था। वस्तुतः इस विचित्र संसार ने जगत के प्रत्येक महापुरुष को तीखा-कड़वा अनुभव कराया है।

(अनुक्रम)

दुष्टता की दुनिया

मार्टिन लूथर नामक एक गुरु ने क्रिश्चियन धर्म में प्रचलित अनेक बुराइयों और मतभेदों को सुधारने के लिए झंडा उठाया तो पोप और उनके सहयोगियों ने मार्टिन को इतना हैरान करना आरंभ किया कि उनके एक शिष्य ने गुरु से कहाः "गुरुजी! अब तो हद हो गई है। अब एक शाप देकर इन सब लोगों को जला कर राख कर दीजिए।"

लूथरः "ऐसा कैसे हो सकता है?"

शिष्यः "आपकी प्रार्थना तो भगवान सुनते हैं। उन्हें प्रार्थना में कह दें कि इन सब पर बिजली गिरे।"

लूथरः "वत्स! यदि मैं भी ऐसा ही करने लगूँ तो मुझमें और उनमें क्या अन्तर रह जाएगा?"

शिष्यः "लेकिन इन लोगों का अविवेक, अन्याय और इनकी नासमझी तो देखिये! क्या बिगाड़ा है आपने इनका.....? आप जैसे सात्त्विक सज्जन और परोपकारी संत को ये नालायक, दुष्ट और पापी जन......"

शिष्य आगे कुछ और बोले उसके पहले ही लूथर बोल पड़ेः "उसे देखना हमारा काम नहीं है। हमें तो अपने ढंग से असत्य और विकृतियों को उखाड़ फेंकने का काम करना है। शेष सारा काम भगवान को स्वयं देखना है।"

शिष्य से रहा न गया तो उसने पुनः विनम्रता से कहाः "गुरुदेव! आप अपनी शक्ति आजमा कर ही उन्हें क्यों नहीं बदल देते? आप तो सर्वसमर्थ हैं।"

लूथरः "यदि राग और द्वेष, रोग और दोष अन्तःकरण से न घटे तो गुरुदेव किस प्रकार सहायक बन सकते हैं? मेरा काम है दुरित (पाप) का विसर्जन कर सत्य और शुभ का नवसर्जन करना। दूसरों को जो करना हो, करें। अपना काम तो अपने रास्ते पर दृढ़तापूर्वक चलना है।"

(अनुक्रम)

समझदारी की पगडंडी

सच्चे ज्ञानी इस समझदारी को साथ रखते हुए ही अपने रास्ते पर चलते रहते हैं, किन्तु किसी अकल्पनीय कारण से उनके टीकाकार या विरोधी अपना गलत रास्ता नहीं छोड़ते। उन अभागों की मनोदशा ही ऐसी होती है। भर्तृहरि ने कहा है कि जैसे कुत्ता हड्डी चबाता है, उसके मसूड़ों में से रक्त निकलता है और ऐसे लगता है मानो उस हड्डी में से निकला हुआ रक्त उसे स्वाद दे रहा है। इसी प्रकार निन्दा करने वाला व्यक्ति भी किसी दूसरे का बुरा करने के प्रयत्न के साथ विकृत मज़ा लेने का प्रयत्न करता है। इस क्रिया में बोलने वाले के साथ सुनने वाले का भी सत्यानाश होता है। निन्दा एक प्रकार का तेजाब है। वह देने वाले की तरह लेने वाले को भी जलाता है।

ज्ञानी का ज्ञानदीप सर्वत्र प्रकाश फैलाता है, किन्तु मनुष्य तो आँख मूँदकर बैठा है। उस पर इस प्रकाश को कोई असर नहीं होता। ऐसा आदमी दूसरे को भी सलाह देता है कि तुम भी आँखें बन्द कर लो। इस प्रकार वह दूसरे को भी सत्संग के प्रकाश से दूर रखता है।

समाज व राष्ट्र में व्याप्त दोषों के मूल को देखा जाये तो सिवाय अज्ञान के उसका अन्य कोई कारण ही नहीं निकलेगा और अज्ञान तब तक बना ही रहता है जब तक कि किसी अनुभवनिष्ठ ज्ञानी महापुरुष का मार्गदर्शन लेकर लोग उसे सच्चाई से आचरण में नहीं उतारते।

समाज जब ऐसे किसी ज्ञानी संतपुरुष का शरण, सहारा लेने लगता है तब राष्ट्र, धर्म व संस्कृति को नष्ट करने के कुत्सित कार्यों में संलग्न असामाजिक तत्त्वों को अपने षडयन्त्रों का भंडाफोड़ हो जाने का एवं अपना अस्तित्व खतरे में पड़ने का भय होने लगता है, परिणामस्वरूप अपने कुकर्मों पर पर्दा डालने के लिए वे उस दीये को ही बुझाने के लिए नफरत, निन्दा, कुप्रचार, असत्य, अमर्यादित व अनर्गल आक्षेपों व टीका-टिप्पणियों की आँधियों को अपने हाथों में लेकर दौड़ पड़ते हैं, जो समाज में व्याप्त अज्ञानांधकार को नष्ट करने के लिए महापुरुषों द्वारा प्रज्जवलित हुआ था।

ये असामाजिक तत्त्व अपने विभिन्न षडयन्त्रों द्वारा संतों व महापुरुषों के भक्तों व सेवकों को भी गुमराह करने की कुचेष्टा करते हैं। समझदार साधक या भक्त तो उनके षडयंत्रजाल में नहीं फँसते, महापुरुषों के दिव्य जीवन के प्रतिपल से परिचित उनके अनुयायी कभी भटकते नहीं, पथ से विचलित होते नहीं अपितु सश्रद्ध होकर उनके दैवी कार्यों में अत्यधिक सक्रिय व गतिशील होकर सहभागी हो जाते हैं लेकिन जिन्होंने साधना के पथ पर अभी-अभी कदम रखे हैं ऐसे नवपथिकों के गुमराह कर पथच्युत करने में दुष्टजन आंशिक रूप से अवश्य सफलता प्राप्त कर लेते हैं और इसके साथ ही आरम्भ हो जाता है नैतिक पतन का दौर, जो संतविरोधियों की शांति व पुष्पों को समूल नष्ट कर देता है, कालान्तर में उनका सर्वनाश कर देता है। कहा भी गया हैः

संत सतावे तीनों जावे, तेज बल और वंश।

ऐड़ा-ऐड़ा कई गया, रावण कौरव केरो कंस।।

साथ ही नष्ट होने लगती है समाज व राष्ट्र से मानवता, आस्तिकता, स्वर्गीय सरसता, लोकहित व परदुःखकातरता, सुसंस्कारिता, चारित्रिक सम्पदा तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना। इससे राष्ट्र नित्य-निरन्तर पतन के गर्त में गिरता जाता है।

यदि हम वर्तमान भारत के नैतिक मूल्यों के पतन का कारण खोजें तो स्पष्टतः पता चलेगा कि समाज आज महापुरुषों के उपदिष्ट मार्ग का अनुसरण करने की अपेक्षा इसकी पुनित-पावन संस्कृति के हत्यारों के षडयन्त्रों का शिकार होकर असामाजिक, अनैतिक तथा अपवित्रता युक्त विचारों व लोगों का अन्धानुकरण कर रहा है।

जिनका जीवन आज भी किसी संत या महापुरुष के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सान्निध्य में है, उनके जीवन में आज भी निश्चिन्तता, निर्विकारिता, निर्भयता, प्रसन्नता, सरलता, समता व दयालुता के दैवी गुण साधारण मानवों की अपेक्षा अधिक ही होते हैं तथा देर सवेर वे भी महान हो ही जाते हैं और जिनका जीवन महापुरुषों का, धर्म का सामीप्य व मार्गदर्शन पाने से कतराता है, वे प्रायः अशांत, उद्विग्न व दुःखी देखे जाकर भटकते रहते हैं। इनमें से कई लोग आसुरी वृत्तियों से युक्त होकर संतों के निन्दक बनकर अपना सर्वनाश कर लेते हैं।

शास्त्रों में आता है कि संत की निन्दा, विरोध या अन्य किसी त्रुटि के बदले में संत क्रोध कर दें, श्राप दे दें अथवा कोई दंड दे दें तो इतना अनिष्ट नहीं होता, जितना अनिष्ट संतों की खामोशी व सहनशीलता के कारण होता है। सच्चे संतों की बुराई का फल तो भोगना ही पड़ता है। संत तो दयालु एवं उदार होते हैं, वे तो क्षमा कर देते हैं लेकिन प्रकृति कभी नहीं छोड़ती। इतिहास उठाकर देखें तो पता चलेगा कि सच्चे संतों व महापुरुषों के निन्दकों को कैसे-कैसे भीषण कष्टों को सहते हुए बेमौत मरना पड़ा है और पता नहीं किन-किन नरकों में सड़ना पड़ा है। अतैव समझदारी इसी में है कि हम संतों की प्रशंसा करके या उनके आदर्शों को अपना कर लाभ न ले सकें तो उनकी निन्दा करके अपने पुण्य व शांति भी नष्ट नहीं करनी चाहिए।

(अनुक्रम)

पारसमणि

एक भाई ने किसी संत से पूछाः "संत पुरुष तो पारसमणि के समान माने जाते हैं। फिर वे ऐसे दुष्टजनों को भी क्यों नहीं बदलते?"

संतः "जो लोग अपने आसपास जड़ता की पर्त चढ़ाकर घूमते-फिरते हों उन्हें संतत्व का स्पर्श भला किस प्रकार हो सकता है? जिस लोहे को पारसमणि स्पर्श ही न कर सकता हो वह भला कंचन किस प्रकार बन सकता है?"

श्रोताः "आपकी बात तो सत्य है, किन्तु दूसरा कुछ न हो सके तो भी संसार के कल्याण के लिए संतों द्वारा दुष्टता को हटाना ही चाहिए।"

संतः "जो काम स्वयं भगवान अपने हाथ में नहीं लेते उसे सत्पुरुष क्यों लेने लगे? ईश्वर की ओर से मनुष्य को किस रास्ते जाना है यह अधिकार दिया गया है। सत्पुरुष तो उसे रास्ता बताते हैं, ऊँगली पकड़कर चलाते हैं, किन्तु इससे अधिक आगे जाकर उसे सत्पथ पर घसीटा तो नहीं जा सकता।?"

(अनुक्रम)

अर्थहीन पश्चाताप

जब सुकरात की मृत्यु हुई तब उस मृत्यु का कारण बनने वाले एक दुष्ट व्यक्ति को बड़ा पछतावा हुआ। वह सुकरात के शिष्य से जाकर बोलाः

"मुझे सुकरात से मिलना है।"

"क्या अब भी तुम्हें उनका पीछा नहीं छोड़ना है?"

"नहीं भाई, ऐसा नहीं है। मुझे बहुत पछतावा हो रहा है। मुझे ऐसा लग रहा है कि मैंने उन महापुरुष के प्रति भयंकर अपराध किया है। मुझे उनसे क्षमा माँगनी है।"

"अरे मूर्ख व्यक्ति! यह तो अब असंभव है। पुल के नीचे बहुत पानी बह गया है।"

स्वयं सुकरात ने एक स्थान पर कहा हैः

"अंतिम समय में, मृत्युवेला में मनुष्य सत्य को पहचान ले यह संभव है, किन्तु उस समय बहुत विलम्ब हो चुका होता है।"

सत्यानाश कर डालने के बाद पश्चाताप करने का कोई अर्थ नहीं। किन्तु इन्सान भी बड़ा ही अजीब किस्म का व्यापारी है। जब हाथ से निकल जाती है तब वह उसकी कीमत पहचानता है। जब महापुरुष शरीर छोड़कर चले जाते हैं, तब उनकी महानता का पता लगने पर वह पछताते हुए रोते रह जाता है और उनके चित्रों को दीवार पर सजाता है लेकिन उनके जीवित सान्निध्य में कभी अपना दिल दिया होता तो बात ही कुछ ओर होती। अब पछताये होत क्या... जब संत गये निजधाम।

(अनुक्रम)

अंधकार की छाया

स्वामी विवेकानन्द की तेजस्वी और अद्वितिय प्रतिभा के कारण कुछ लोग ईर्ष्या से जलने लगे। कुछ दुष्टों ने उनके कमरे में एक वेश्या को भेजा। श्री रामकृष्ण परमहंस को भी बदनाम करने के लिए ऐसा ही घृणित प्रयोग किया गया, किन्तु उन वेश्याओं ने तुरन्त ही बाहर निकल कर दुष्टों की बुरी तरह खबर ली और दोनों संत विकास के पथ पर आगे बढ़े। शिर्डीवाले साँईबाबा, जिन्हें आज भी लाखों लोग नवाजते हैं, उनके हयातिकाल में उन पर भी दुष्टों ने कम जुल्म न

किये। उन्हें भी अनेकानेक षडयन्त्रों का शिकार बनाया गया लेकिन वे निर्दोष संत निश्चिंत ही रहे।

पैठण के एकनाथ जी महाराज पर भी दुनिया वालों ने बहुत आरोप-प्रत्यारोप गढ़े लेकिन उनकी विलक्षण मानसिकता को तनिक भी आघात न पहुँचा अपितु प्रभुभक्ति में मस्त रहने वाले इन संत ने हँसते-खेलते सब कुछ सह लिया। संत तुकाराम महाराज को तो बाल मुंडन करवाकर गधे पर उल्टा बिठाकर जूते और चप्पल का हार पहनाकर पूरे गाँव में घुमाया, बेइज्जती की एवं न कहने योग्य कार्य किया। ऋषि दयानन्द के ओज-तेज को न सहने वालों ने बाईस बार उनको जहर देने का बीभत्स कृत्य किया और अन्ततः वे नराधम इस घोर पातक कर्म में सफल तो हुए लेकिन अपनी सातों पीढ़ियों को नरकगामी बनाने वाले हुए।

हरि गुरु निन्दक दादुर होई।
जन्म सहस्र पाव तन सोई।।

ऐसे दुष्ट दुर्जनों को हजारों जन्म मेंढक की योनि में लेने पड़ते हैं। ऋषि दयानन्द का तो आज भी आदर के साथ स्मरण किया जाता है लेकिन संतजन के वे हत्यारे व पापी निन्दक किन-किन नरकों की पीड़ा सह रहे होंगे यह तो ईश्वर ही जाने।

समाज को गुमराह करने वाले संतद्रोही लोग संतों का ओज, प्रभाव, यश देखकर अकारण जलते पचते रहते हैं क्योंकि उनका स्वभाव ही ऐसा है। जिन्होंने संतों को सुधारने का ठेका ले रखा है उनके जीवन की गहराई में देखोगे तो कितनी दुष्टता भरी हुई है! अन्यथा सुकरात, जीसस, ज्ञानेश्वर, रामकृष्ण, रमण महर्षि, नानक और कबीर जैसे संतों को कलंकित करने का पाप ही वे क्यों मोल लेते? ऐसे लोग उस समय में ही थे ऐसी बात नहीं, आज भी मिला करेंगे।

कदाचित् इसीलिए विवेकानन्द ने कहा थाः "जो अंधकार से टकराता है वह खुद तो टकराता ही रहता है, अपने साथ वह दूसरों को भी अँधेरे कुएँ में ढकेलने का प्रयत्न करता है। उसमें जो जागता है वह बच जाता है, दूसरे सभी गड्डे में गिर पड़ते हैं।

(अनुक्रम)

चेतना का हनन

मार्टिन लूथर नाम के एक संत से उसके एक स्वजन ने कहाः "आप यह जो समाज में प्रचलित अज्ञान का विद्रोह कर रहे हैं, उससे आपके अनेकों दुश्मन बन गये हैं।"

ब्युबरः "मैं आनन्द, शांति और प्रेम की उस भूमिका पर हूँ, जहाँ कोई भी व्यक्ति मेरा दुश्मन नहीं बन सकता। तुम उनको समझाओ कि वे अपने आप को ही नुकसान पहुँचा रहे हैं।"

स्वजनः "उन संतनिन्दकों से किसी भी प्रकार की दलील करना बेकार है।"

मार्टिन ने कहाः "आकाश पाताल के प्राकृतिक रहस्य भले ही न जाने जा सकें, किन्तु मनुष्य को अपने आप को तो सच्चे स्वरूप में जान ही लेना चाहिए। आत्म-स्वरूप के परिचय के

अलावा सभी कार्य जीवनहनन हैं। हम उन लोगों की तरह मूर्खता कर अपने जीवन का ह्रास क्यों करें?"

(अनुक्रम)

अपार परदे

नोबल पुरस्कार विजेता और विश्वविख्यात साहित्यकार रवीन्द्रनाथ टैगोर ने जिस समय शान्ति निकेतन की स्थापना की उस समय बंगाल के कुछ जमींदारों ने यह कहना आरंभ किया कि यह तो एक नया तमाशा है। इन बातों पर जब गुरुदेव से स्पष्ट करने को कहा गया, तब उन्होंने कहाः "मुझे समाज के उत्थान में रूचि है। उसके लिए मैंने व्यक्ति के उत्थान का रास्ता पसन्द किया है। सबके जीवन में सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् की प्रतिष्ठा के लिए ही मेरा प्रयत्न चल रहा है। यदि उसे कोई समझना न चाहे तो मुझे क्या? खामख्वाह बकवास फैलाये तो मुझे क्या?"

(अनुक्रम)

दिव्यता की चाह

दक्षिण के विख्यात संत तिरुवल्लुबर के एक प्रधान शिष्य ने उनसे दूर हटकर उनके सम्बन्ध में ही उल्टी-सीधी बातें करना शुरु कर दिया। इस पर एक शिष्य ने संत से कहाः "उसे आप यहाँ बुलाकर सबके सामने फटकारिए।"

संत ने कहाः "राम...राम! यह मुझसे कैसे होगा? उसका हृदय तो उसे अन्दर से ही फटकारता होगा कि वह जो कुछ कर रहा है, वह अनुचित है। एक बार जटिल लोग कुछ पकड़ लेते हैं तो फिर उसे छोड़ नहीं सकते। ईर्ष्यालु आदमी एक बार निन्दाखोरी पका लेता है, फिर उसकी आदत बन जाती है। आदत छोड़ना मुश्किल है।

शिष्यः "एक समय का प्रेम किस प्रकार वैर में बदल गया है? उसकी श्रद्धा कैसी घृणा में परिवर्तित हो गई है।"

तब संत तिरुवल्लुवर ने कहाः "मित्र का मार्ग भले ही बदल जाये, किन्तु हमें मित्रता नहीं बदलनी चाहिए। यदि यह सत्य सभी लोग समझ लें, तो संसार की आज जो स्थिति है, क्या वह रह सकती है?"

(अनुक्रम)

आदत के गुलाम

एक सज्जन ने पूछाः "गाँधी जी के बारे में उनके आश्रमवासी प्यारेलाल ने जो लिखा है, क्या आप उसे जानते हैं?"

दूसराः "हाँ, मैं उसे जानता हूँ।"

पहलाः "क्या यह सब सत्य होगा?"

दूसराः "हमें उस पर विचार करने की आवश्यकता ही क्या है? जिसे अभद्रता पसन्द है, चन्द्रमा में भी कलंक देखेगा। वह चन्द्र की शीतल चाँदनी का लाभ लेने के बदले दूसरी-तीसरी बातें करेगा, क्या यह ठीक माना जायेगा?

मैंने अनेक अनुभवों के बाद यह निश्चय किया है कि जिस बरसात से फसल पैदा न हो, वह बरसात नहीं झींसी है। इस संसार में ऐसे अनेक मनुष्य हैं, जो अपनी अलभ्य चैतन्य शक्ति को इधर-उधर नष्ट कर देते हैं। ऐसे लोग अमृत को भी विष बनाकर ही पेश करते हैं।"

(अनुक्रम)

भूल का मूल

स्वामी रामतीर्थ के शिष्य सरदार पूरणसिंह ने प्रथम परिचय में ही सन्यास ग्रहण कर लिया। इसके बाद उन्होंने अपना विवाह किया। लोग इस सम्बन्ध में स्वामी रामतीर्थ से शिकायत करने लगे।

स्वामी जी ने कहाः "वह मेरे बुलाने से मेरे पास नहीं आया था। फिर भी आ गया और उसने मुझसे प्रार्थना की तो मैंने उसे ज्ञान दिया। वह अपने आप सन्यासी बना। अब वह यदि अपना रास्ता बदल दे तो मुझे क्या परेशानी है? चरवाहा बन कर मैं कितने भेड़-बकरियों की रखवाली करता रहूँगा?"

"एक व्यक्ति की भूल के लिए यदि दूसरे व्यक्ति को कष्ट सहना पड़ता हो तो उसके लिए कोई उपाय तो करना ही चाहिए।"

"यह तो तुमको सोचना है कि किसने क्या भूल की। अपने राम को यह झंझट पसन्द नहीं है। मैं तो अपने आप में लीन हूँ, मस्त हूँ। दूसरे लोग अपनी संभालें।"

(अनुक्रम)

आचार धर्म की लगन

साबो नामक एक जापानी झेन साधु थे। उनकी निन्दा इतनी बढ़ गई कि उनके शिष्य परेशान हो गये। एक खास शिष्य ने कहाः "गुरुजी! हम लोगों को यह नासमझ गाँव छोड़ कर चले जाना चाहिए।"

गुरुः "ऐसा करने का क्या कारण है?"

शिष्यः "मुझे आपकी निन्दा पसन्द नहीं आती। यहाँ के लोग जाने क्या-क्या असत्य फैलाते हैं? हमें यह समझ में नहीं आता कि क्या करें।"

गुरुः "निन्दकों का काम है निन्दा करना तथा अपने पुण्यों एवं आन्तरिक शांति का विनाश करना। संत का निन्दक तो महा हत्यारा होता है तथा मरकर सदियों तक कीट-पतंग और मेंढक की म्लेच्छ योनियों में सड़ता रहता है। दुष्ट तो सज्जनों की कल्पित अफवाहें उड़ाते ही रहते हैं। तुम अपने सत्य के आचारधर्म में इतने तटस्थ रहो कि शेष सब तुच्छ प्रतीत होने लगे।"

यह बात सत्य है। प्रकाश की पूजा में इतनी तन्मयता होनी चाहिए कि अन्धकार की ओर ध्यान देने का अवकाश ही न मिले।

(अनुक्रम)

सत्य के शोधक

तथागत बुद्ध की शिष्य-परम्परा में बोधिधर्म का नाम अधिक प्रसिद्ध है। उस समय तिब्बत, चीन और जापान में हिंसा और अज्ञान ताण्डव चल रहा था। उसने वहाँ जाकर प्रेम, शान्ति और करुणा का सन्देश दिया। उन्होंने अपने एक शिष्य को मंगोलिया भेजने का निश्चय किया।

शिष्य बोलाः "क्या काल-ज्वाल मंगोल लोग मुझे जान से मारे बिना छोड़ेंगे? उनके पास जाना एक बड़ा साहस है।"

बोधिधर्मः "जिसे सत्य का पता लगाना हो, उसे ऐसा साहस करने से डरना नहीं चाहिए।"

शब्दों का यह पाथेय लेकर वह शिष्य मंगोलिया चला गया। उसने हिंसावतार सरीखी मंगोलियन जनता में तथागत का सन्देश फहराया। उसने खूब कष्ट सहन कर असंख्य लोगों को सच्चे जीवन का सन्देश दिया।

बड़े धनभागी हैं वे सतशिष्य जो तितिक्षाओं को सहने का बाद भी अपने सदगुरु के ज्ञान औ भारतीय संस्कृति के दिव्य कणों को दूर-दूर तक फैलाकर मानव-मन पर व्याप्त अंधकार को नष्ट करते रहते हैं। ऐसे सतशिष्यों को शास्त्रों में पृथ्वी पर के देव कहा जाता है।

(अनुक्रम)

काँटे बोने वाले

हजरत मोहम्मद को एक बार ऐसा पता लगा कि उनके पास आने वाले एक व्यक्ति को निन्दा करने की बड़ी आदत है। उन्होंने उस व्यक्ति को अपने पास बुलाकर नरम पँखों से बनाये गये एक तकिये को देते हुए कहा कि यह पँख तुम घर-घर में फेंक आओ। उस व्यक्ति को कुछ पता न चल पड़ा। उसने प्रत्येक घर में एक-एक पँख रखते हुए किसी न किसी की निन्दा भी की।

दूसरे दिन शाम को पैगम्बर ने उसे बुलाकर कहाः "अब तू पुनः जा और सारे पँखों को वापस ले आ।"

"यह अब कैसे हो सकेगा? सारे पँख न जाने कहाँ उड़कर चले गये होंगे?"

"इसी प्रकार तू जो जगह-जगह जाकर गैर जिम्मेदार बातें करता है, वे भी वापस नहीं आ सकती। वे भी इधर-उधर उड़ जाती हैं। उनसे तुझे कुछ मिलता नहीं बल्कि तेरी जीवनशक्ति का ही ह्रास होता है और सुनने वालों की भी तबाही होती है।

संत तुलसीदास ने कितना स्पष्ट लिखा है!

हरि गुरु निन्दा सुनहिं जे काना
होहिं पाप गौ घात समाना।
हरि गुरु निन्दक दादुर होई
जन्म सहस्र पाव तन सोई।।

(अनुक्रम)

धुँधलापन

यदि निन्दा में रुचि लेने वाला व्यक्ति इतना समझ जाए कि निन्दा क्या है तो कितना अच्छा हो! किन्तु यदि वह इसे समझना ही न चाहे तो क्या किया जा सकता है?

एक सज्जन ने कहाः "सत्य की तुलना में असत्य बिल्कुल निर्बल होता है। फिर भी वह इतनी जल्दी क्यों फैल जाता है?"

"इसका कारण यह है कि सत्य जब तक अपना जूता पहनता है, तब तक असत्य सारी पृथ्वी का चक्कर लगा आता है।"

सत्य में अस्पष्ट जैसा कुछ नहीं होता। इसमें तो सब कुछ स्पष्ट ही होता है। अस्पष्ट वाणी बोलने वाला स्वयं ही अस्पष्ट बन जाता है। उसके मन पर जो कुहरा छाया रहता है, उसका धुँधलापन वह दूसरों के मन पर भी पोत देता है। उसमें मूल सत्य तो तटस्थ ही रहता है। असत्य अपने हजारों रंग दिखाता है।

(अनुक्रम)

शील का स्वर्ण

स्वामी दयानन्द जिस प्रकार जीर्ण-शीर्ण परम्पराओं और स्थापित हितों का विरोध करते थे उसे देखकर अनेक दकियानूसों को मन में चुभन होती थी। उन लोगों ने दयानन्द जी की तेजस्विता घटाने के लिए तरह-तरह के प्रयत्न किये। इसी प्रकार के एक बेवकूफी भरे प्रयाम में उनको जहर देकर मार डाला गया।

स्वामी जी के बारे में स्वामी श्रद्धानन्द ने कहाः

"जो अधकचरे व्यक्ति चरित्रभ्रष्ट थे, वे भला इस शुद्ध सोने को कैसे पहचान सकते? जिनमें सार असार के पहचानने की शक्ति नहीं, वे चरित्र कहाँ से गढ़ सकते हैं? ऐसे सत्व को पहचानने के लिए भी तो अपने में सत्व होना चाहिए।"

स्वयं जिसमें संतत्व का अंश नहीं, संत के संतत्व को वह अभागा जान भी कैसे सकता है? उनको तो दूसरे में दोष देखने में मज़ा आता है, जो दोष न हो तो उसे भी ढूँढ निकालने में उनकी रुचि होती है। ऐसे आसुरी स्वभाव वाले पामर व्यक्ति स्वयं अशान्त होते हैं, परेशान जीते हैं और परेशानी फैलाते हैं।

(अनुक्रम)

बलिदान का बल

एक सत्पुरुष के सम्बन्ध में कुछ आलेखन हो रहा था। उसी समय एक व्यक्ति आया और बोलाः

"उनके बारे में तो न जाने क्या-क्या कहा जाता है?"

"क्या तुमने स्वयं उन्हें देखा है? देखने और सुनने में भी अन्तर होता है।"

"किन्तु ऐसी बातें वे लोग कहते हैं, जो उनके पास जाते थे।"

"तुम उनकी बात से ही निष्कर्ष निकाल लो। सच्चा मित्र वह है, जो अपने मित्र के बारे में असंगत विचार न प्रकट करे। कहावत है कि समझदार दुश्मन नादान दोस्त से अच्छा होता है। फिर हम किसी बात को बिना विचारे क्यों मान लें?"

बलिदान के बिना प्रेम अधूरा है। जहाँ पर अपना तुच्छ स्वार्थ न साधा जा सके, कुछ भ्रम पैदा हो, अनिच्छा जगे वहाँ अनादर बरसने लगता है। ऐसा प्रेम किस काम का? ऐसा सम्बन्ध कैसा?

(अनुक्रम)

अचलता का आनन्द

बाल्शेम्टोव नाम के एक हासिद धर्मगुरु थे। वे अतिशय पवित्र आत्मा थे। फिर भी उनके विरोधियों ने उनकी निन्दा का ऐसा मायाजाल फैलाया कि वे अकेले पड़ गये। केवल पाँच साधक ही उनके पास बचे रहे। एक विरोधी ने उन पाँचों को भी फोड़ लेने का अपना दाव चलाया।

एक शिष्य ने कहाः "हे निन्दाखोर! तेरी वाणी में अमृत भरा है और तू अपने को मेरा हितकारी होने का दिखावा करता है किन्तु मुझे पता है कि तेरे हृदय में विष भरा है। तू एक खतरनाक व्यक्ति है। हम लोग तेरे जाल में नहीं फँसेंगे।"

सच्चे स्वजन के सुख-दुःख अपनत्व भरे होते हैं। उनके प्रेम में कभी जुदाई नहीं होती। सामान्य रूप से वे सभी जिम्मेदारियाँ निभाते हैं और जब कोई कसौटी का समय आता है, तब वे एकदम तैयार हो जाते हैं। उन्होंने जितना प्रेम दिया है और उनसे बदले में जो अनेक गुना प्रेम पाया है, उनके विरुद्ध एक भी शब्द सुनने को वे तैयार नहीं होते। उनके विरुद्ध बोलने वालों को वे ऐसा जवाब देते हैं, जिसे सुनकर वह चलता बनता है। हाँ में हाँ मिलाने की बात तो उन्हें सुहाती ही नहीं।

अपने पुराने गुरु की निन्दा करने वाले एक महानुभाव से मैंने कहाः "इस प्रकार निन्दा करने से आपको कोई लाभ नहीं मिलेगा। अभिप्रायों के आदान-प्रदान में त्रिशंकु बन कर लटकने की आवश्यकता नहीं। लुढ़कने वाला बनकर आमने-सामने टकराने की आवश्यकता नहीं है। तुम अपने हृदय और अपनी आत्मा के व्यवहारों में अपने आन्तरिक विचारों का पता लगाओ। वहाँ से तुम्हें जो नवनीत मिलेगा, वही सच्चा होगा। इसके अतिरिक्त जो भी बकवास करोगे उससे तुम्हारा ही पतन होगा। तुम्हारी इस निन्दा से उन संत की कोई हानि नहीं होगी अपितु तुम्हारा ही सर्वनाश होगा।"

(अनुक्रम)

विकास के वैरी

यह सत्य है कि कच्चे कान के लोग दुष्ट निन्दकों के वाक्जाल में फँस जाते हैं। जिस व्यक्ति ने अपने जीवन में आत्मशांति देने वाला, परमात्मा से जोड़ने वाला कोई काम नहीं किया है, उसकी बात सच्ची मानने का कोई कारण ही नहीं है। तदुपरान्त मनुष्य को यह भी विचार करना चाहिए कि जिसकी वाणी और व्यवहार में हमें जीवनविकास की प्रेरणा मिलती है, उसका यदि कोई अनादर कराना चाहे तो हम उस महापुरुष की निन्दा कैसे सुन लेंगे? व कैसे मान लेंगे?

सत्पुरुष हमें जीवन के शिखर पर ले जाना चाहते हैं किन्तु कीचड़ उछालने वाला आदमी हमें घाटी की ओर खींचकर ले जाना चाहता है। उसके चक्कर में हम क्यों फँसें? ऐसे अधम व्यक्ति के निन्दाचारों में पड़कर हमें पाप की गठरी बाँधने की क्या आवश्यकता है? इस जीवन में तमाम अशान्तियाँ भरी हुई हैं। उन अशान्तियों में वृद्धि करने से क्या लाभ?

(अनुक्रम)

तलहटी में जाने वाले

महान चिन्तक ईमर्सन से उसके किसी मित्र ने कहाः "एक व्यापारी आपकी घोर निन्दा करता और कई लोग उसके साथ जुड़े हैं।"

ईमर्सनः "वह व्यापारी भले ही मेरी निन्दा करे, किन्तु तुम क्यों उसकी निन्दा करते हो? हमारे पास अनेक अच्छे काम हैं। हमारे जीवन का विकास करने की, सत्व के मार्ग पर चलने की बड़ी-बड़ी जिम्मेदारियाँ पड़ी हैं। उनको छोड़कर ऐसी व्यर्थ की चर्चाओं में समय देने की क्या आवश्यकता ?"

मित्रः "किन्तु लोग ऐसा बोलते ही क्यों हैं? दूसरे की निन्दा क्यों करते हैं?"

ईमर्सनः "लोगों की जीभ है इसलिए बोलते हैं। उनको अपनी बुद्धि का उपयोग करने की स्वतन्त्रता है। उनको यदि अपनी बुद्धि का उपयोग कुएँ में कूदने के लिए करना है, तो उन्हें किस प्रकार रोका जाए?"

मनुष्य सब कुछ करने के लिए स्वतंत्र है। यदि उसका अधम तत्त्व उत्तम तत्त्व के नियंत्रण में रहे तो ही सच्ची स्वतंत्रता होगी। हमें यह देखना है कि क्या इस नियम का निर्वाह हमारे जीवन में हो रहा है?

(अनुक्रम)

संतो की सहिष्णुता

सिंधी जगत के महान तपोनिष्ठ ब्रह्मज्ञानी संत श्री टेऊँरामजी ने जब अपने चारों ओर समाज में व्याप्त भ्रष्टाचारों को हटाने का प्रयत्न किया, तब अनेकानेक लोग आत्मकल्याण के लिए सेवा में आने लगे। जो अब तक समाज के भोलेपन और अज्ञान का अनुचित लाभ उठा रहे थे, समाज का शोषण कर रहे थे, ऐसे असामजाजिक तत्त्वों को तो ये बात पसन्द ही न आई। कुछ लोग डोरा-धागा-तावीज का धन्धा करने वाले थे तो कुछ शराब, अंडा, माँस मछली आदि खाने वाले थे तथा कुछ लोग ईश्वर पर विश्वास न करने वाले एवं संतों की विलक्षण कृपा, करुणा व सामाजिक उत्थान के उनके दैवी कार्यों को न समझकर समाज में अपने को मान की जगह पर प्रतिष्ठित करने की इच्छा वाले क्षुद्र लोग थे। वे संत की प्रसिद्धि और तेजस्विता नहीं सह सके। वे लोग विचित्र षडयंत्र बनाने एवं येनकेन प्रकारेण लोगों की आस्था संत जी पर से हटे ऐसे नुस्खे आजमाकर संत टेऊँरामजी की ऊपर कीचड़ उछालने लगे। उनको सताने में दुष्ट हतभागी पामरों ने ज़रा भी कोरकसर न छोड़ी। उनके आश्रम के पास मरे हुए कुत्ते, बिल्ली और नगरपालिका की गन्दगी फेंकी जाती थी। संतश्री एवं उनके समर्पित व भाग्यवान शिष्य चुपचाप सहन करते रहे और अन्धकार में टकराते हुए मनुष्यों को प्रकाश देने की आत्मप्रवृत्ति उन्होंने न छोड़ी।

संत कंवररामजी उस समय समाज-उत्थान के कार्यों में लगे हुए थे। हतभागी, कृतघ्न, पापपरायण एवं मनुष्य रूप में पशु बने हुए लोगों को उनकी लोक-कल्याणकारक उदात्त सत्प्रवृत्ति पसन्द न आई। फलतः उनकी रुफसु स्टेशन पर हत्या कर दी गई। फिर भी संत कंवररामजी महान संत के रूप में अभी भी पूजे जा रहे हैं। सिंधी जगत बड़े आदर के साथ आज भी उन्हें प्रणाम करता है लेकिन वे दुष्ट पापी व मानवता के हत्यारे किस नरक में अपने नीच कृत्यों का

फल भुगत रहे होंगे तथा कितनी बार गंदी नाली के कीड़े व मेंढक बन लोगों का मल-मूत्र व विष्ठा खाकर सड़कों पर कुचले गये होंगे, पता नहीं। इस जगत के पामरजनों की यह कैसी विचित्र रीति है।?

वाह री दुनिया....! खूब बदला चुकाया तूने महापुरुषों के उदारतायुक्त उपकारों का...! संत समाज में ज्ञान का प्रकाश फैलाते हैं और बदले में समाज उन्हे सूली पर चढ़ाता है। वे महापुरुष समाज में शांति और आनन्द का प्रसाद वितरण करते हैं और बदले में समाज उन्हें जहर पिलाता है। वे समाज में शांति व प्रेम का सन्देश देते हैं तो यह हत्यारा समाज... यह क्रूर समाज नीचता की हद से भी नीचे गिर रहा समाज.... पापियों और दुष्टों की बहुलता से भरा समाज... ढोंगियों और पाखंडियों का दीवाना समाज और सत्यता को समझने का सामर्थ्य खोकर बुद्धि से भ्रष्ट हुए इसके लोग उन सच्चे संतों पर मिथ्या आरोप लगाकर उनका चरित्रहनन करते हैं। संत समाज से बुराइयों व कुरीतियों को दूर करना चाहते हैं तो दुष्प्रवृत्तियों में संलग्न रहने वाला यह स्वार्थी समाज उन्हें ही दूर कर देना चाहता है। इसीलिए तो गांधी को गोली, सुकरात व दयानन्द को जहर एवं ईसा को सूली पर चढ़ना पड़ा और बेमौत मरना पड़ा।

जब-जब किसी सच्चे राहनुमा ने समाज को सच्ची रहा दिखाने के लिए अपने जीवन की सारी खुशियों को तिलांजली देकर इस मैदान में प्रवेश किया है तब-तब असामाजिक व स्वार्थी तत्त्वों ने उनकी राह ही खोद डालना चाही और आज भी यह क्रम जारी है। समाज के उन हत्यारों की इस वैचारिक दरिद्रता पर महापुरुषों को दया भी आती है।

सिक्खों के प्रथम सदगुरु, सिक्ख समुदाय के प्रवर्तक महाज्ञानी गुरु नानक जी जब अपने दिव्य ज्ञान का प्रकाश चारों और फैलाने लगे और अंधकार को विदीर्ण करने लगे तब कुछ असामाजिक तत्त्वों ने उनके सामने मोर्चा लगाना शुरु कर दिया। नानक जी को अज्ञान का अन्धकार हटाने में, लोगों के दुःख दूर करने में, जगत की आपत्तियों से मनुष्यों को बचाने में, परमात्मा के दैवी रस का दान करने में एवं सदगुरुओं की महान उदात्त संस्कृति को जन-जन में फैलाकर अशांति की आग में तप्त लोगों को परमशांति का प्रसाद देने में रुचि थी, किन्तु कुछ अंधकार के पुजारी थे, अज्ञान में दिग्मूढ की स्थिति धारण किये हुए थे, वास्तविक ज्ञान से परे थे। श्रीमद् भागवत के अनुसार वे 'गोखर' अर्थात गधे थे। श्री कृष्ण की गीता के अनुसार वे 'आसुरं भावं आश्रिताः' थे तो भगवान शंकरजी की गुरुगीता के अनुसार वे पाखंडी, पाप में रत एवं नास्तिक थे। उन्होंने श्री गुरु नानक जी को सताने में कोई कोरकसर न छोड़ी थी किन्तु गुरु नानक जी को इसकी कोई परवाह नहीं थी। वे उपराम ही रहते थे और सोचते थे कि **'हाथी चलत है अपनी गत में, कुतिया भौंकत वा को भूँकने दो।'** निजानंद में मग्न इन आत्मज्ञानी संत पुरुषों को भला निन्दा-स्तुति कैसे प्रभावित कर सकती है? वे तो सदैव ही उस अनन्त परमात्मा के अनन्त आनन्द में निमग्न रहते हैं। इन्द्र का वैभव भी कुछ तुच्छ समझने वाले ऐसे संत, जगत में कभी-कभी, कहीं-कहीं, विरले ही हुआ करते हैं।

विरोधियों को जब यह मालूम हुआ कि उनके प्रयत्न निष्फल हो गये हैं, तब उन्होंने बाबर के कान भरे और नानक जी को बन्दीगृह में बन्द करवा दिया। लेकिन आज लाखों-करोड़ों लोग गुरु नानक का जयघोष करके धन्यता का अनुभव कर रहे हैं। नानक जी की उज्जवल कीर्ति से संसार परिचित है। उनके सदुपदेश जिस ग्रन्थ में हैं उस 'गुरुग्रन्थ साहेब' का लाखों लोग आदर करते हैं, प्रणाम करते हैं, अपने जीवन में दैवी गुण लाकर जीवन को उदात्त बनाते हैं, परन्तु संत श्री नानक जी को सताने वाले निन्दाखोर, दुष्ट अभागे, असामाजिक तत्त्व कौन सी योनियों में, कौन से नरक में पच रहे होंगे यह हम नहीं जानते।

भारतवर्ष का इससे अधिक बढ़कर और क्या दुर्भाग्य हो सकता है कि यहाँ के निवासी अपनी ही संस्कृति के रक्षक व जीवनादर्श ईश्वर तुल्य आत्मारामी संतों व महापुरुषों की निन्दा, चरित्रहनन व उनके दैवी कार्यों में विरोध उत्पन्न करने के दुष्कर्मों में संलग्न बनते जा रहे हैं। यदि यही स्थिति बनी रही तो वह दिन दूर नहीं जब हम अपने ही हाथों से अपनी पावन परम्परा व शीर्ष रीते-आचारों को लूटते हुए देखते रह जाएँगे क्योंकि संत संस्कृति के रक्षक, उच्चादर्शों के पोषक व अज्ञानांधकार के शोषक होते हैं और जिस देश में ऐसे संतों का अभाव या अनादर होता है, इतिहास गवाह है कि या तो वह राष्ट्र स्वयं ही मिट जाता है अथवा उसकी संस्कृति ही तहस-नहस होकर छिन्न-भिन्न हो जाती है और स्वाधीन होते हुए भी उस राष्ट्र के वासी स्वयं को पराधीन समझते हुए ही जीवन यापन करते हैं।

एक समय था जब भारत में संतों व महापुरुषों का अत्यधिक आदर कर उनके उपदिष्ट मार्ग का अनुसरण कर तथा उनके वचनों में श्रद्धा एवं उनके दैवी कार्यों में सहभागिता निभाकर देशवासी मंगलमय, शांति व समृद्धि से युक्त निश्चिन्त जीवन यापन करते थे लेकिन जब से देशवासियों ने पाश्चात्य जगत के चकाचौंधमय दूषित वातावरण से प्रभावित होकर महापुरुषों का सान्निध्य विस्मृत कर उनके महान व सात्त्विक कार्यों का विरोध व निन्दा आरम्भ की है तब ही से इस देश में नैतिक मूल्यों की निरन्तर गिरावट बनी हुई है तथा नित्यप्रति मानवीय जीवन से उदारता, दयालुता, पवित्रता, आरोग्यता, निश्चिन्तता, समता, प्रखर बौद्धिकता आदि सदगुणों का ह्रास हो रहा है।

(अनुक्रम)

मूर्खता की सीमा

मनुष्य की हीनवृत्ति तथा निन्दक भावना भूतकाल में ही नहीं थी, अपित यह विकृत प्रवाह आज भी देखा जाता है।

व्यवहार में वेदान्त को कैसे उतारना जीवन में किस प्रकार जोड़ना और सत्त्व के विकास के साथ निर्मल जीवन किस प्रकार जीना, इन विषयों पर बोधक उपदेश देने वाले अनेक प्राणियों के भाग्य बदलने वाले पूज्यपाद संत श्री आसाराम जी महाराज के सम्बन्ध में भी कुछ अबुध गिनेगिनाये लोग उल्टी बाते करते रहते हैं। देशभर में फैले पूज्यश्री के अनेकों आश्रमों तथा श्री योग वेदान्त सेवा समिति की विभिन्न शाखाओं के माध्यम से जीवन के सर्वांगीण विकास, आदिवासी-उत्थान, नारी शक्ति-जागृति, व्यसन मुक्ति, अभियान, निर्धनों की सहायता, आसन-प्राणायाम के माध्यम से रोगनिवारण, आयुर्वैदिक औषधनिर्माण, सत्संग-कीर्तन द्वारा समाज में आध्यात्मिकता की भावना को चिरस्थायी बनाते हुए विचार-प्रदूषण समाप्त करने तथा जप-ध्यान द्वारा आत्मविकास एवं सेवाकार्यों द्वारा आत्मनिर्माण व जीवनोत्थान की अनेकानेक प्रवृत्तियाँ चलती हैं, जिनके द्वारा व्यक्ति, समाज, गाँव, राज्य, देश एवं अन्ततः विश्व का उत्थान होता है, कल्याण होता है, शान्ति व प्रेम का साम्राज्य फैलता है, वैर, घृणा, द्वेष, मारकाट एवं अशांति को तिलांजली मिलती है।

गणतंत्र के स्तम्भ के रूप में पहचाने जाने वाले प्रचार माध्यम भी आज सत्यान्वेषण का सामर्थ्य खोकर जन-मानस में सस्ती लोकप्रियता करने के लिए असत्य व भ्रामक समाचारों के प्रकाशन में संलग्न होकर रवि-रश्मि के प्रचण्ड तेज समुज्जवल ऐसे महापुरुषों के व्यक्तित्व पर कीचड़ उछालकर उनका चरित्रहनन कर रहे हैं।

पत्रकारों के पवित्र पेशे को चन्द असामाजिक तत्त्वों द्वारा भी हाथ में लिये जाने के कारण समाचार पत्र-पत्रिकाआँ की निष्पक्षतायुक्त उज्जवल छवि पर बहुत आघात पहुँचा है। अपनी कलम का व्यावसायीकरण करने से ऐसे कुछ तथाकथित पत्रकार लोग सत्य पर प्रकाश डालने का सामर्थ्य खोकर अपने असत्य आचरणयुक्त संदिग्ध व्यवहार द्वारा ईश्वर, संतों व महापुरुषों के प्रति बनी जनता की श्रद्धा को खंडित कर उन्हें अपने पावन पथ से भ्रष्ट करने का कुकृत्य कर रहे हैं।

सत्य के पक्षधर पत्रकार व समाचार पत्र जगत में लोकप्रियता के शिखर की ऊँचाइयों को दिनप्रतिदिन सफल होकर छूते जाते हैं व समाचार जगत में ही नहीं अपितु मानवमात्र के हृदय में भी आदर व सम्मानजनक स्थान प्राप्त करते है लेकिन सदैव सत्य की निन्दा, विरोध, छिद्रान्वेषण व भ्रामक कुप्रचार में संलग्न लेखक व पत्र-पत्रिकाएँ एक दिन जनता की नज़रों से तो गिरते ही हैं, साथ ही साथ लोगों को भ्रमित व पथभ्रष्ट करने का पाप के भागीदार भी बनते हैं।

किसी सात्त्विक-सज्जन लेखक-पत्रकार से पूछा गया किः

"आज के युग में लेखन क्षेत्र में कलम को चन्द रुपयो की खातिर गिरवी रखकर सत्यता एवं सज्जनता के विरुद्ध राष्ट्रविरोधी ताकतों तथा असामाजिक तत्त्वों के इशारों पर जो अनर्गल व अश्लील कुप्रचार किया जा रहा है, उसमें आप भी सम्मिलित होकर लाभ प्राप्त क्यों नहीं करना चाहते?"

वे कोई विद्वान, सुलझे हुए व चिंतक लेखक थे। उन्होंने तपाक से उत्तर दिया किः "मैं अपनी कलम में स्याही भरकर लिखता हूँ, पेशाब नहीं।"

प्रचार मीडिया आज के उस नाजुक दौर में, जबकि भारतीय संस्कृति को समूल नष्ट करने के राष्ट्रव्यापी षडयंत्रों की व्यूह रचना की जा रही है, संतों व महापुरुषों के अनुभवों एवं दिव्य ज्ञानामृत को लोकहित में प्रचारित-प्रसारित कर ऋषि-मुनियों द्वारा स्थापित आदर्शों व सिद्धान्तों की जितनी अच्छी तरह से रक्षा कर सकता है, उतना देश का अन्य कोई साधन नहीं कर सकता है तथा यही मीडिया असत्य व अनर्गल कुप्रचारों के फैलाव से राष्ट्र का जितना विनाश कर सकता है, उतना अन्य कोई साधन राष्ट्र को पतन के गर्त में नहीं धकेल सकता है।

विदेशी प्रचार मीडिया ने जब वहाँ के महापुरुषों व संतों की निन्दा व अनादर का अनर्गल कुप्रचार आरम्भ किया तो वहाँ की जनता दिग्भ्रमित व पथभ्रष्ट होकर उनके उपदिष्ट मार्गों पर चलना छोड़कर दिशाविहीन हो गई। यही कारण है कि वहाँ के मानवीय जीवन में आज अत्यधिक उच्छृंखलता व पाशविक प्रवृत्तियों का समावेश होकर उनकी अपनी संस्कृति का विनाश हो गया है और वे धर्म, सत्य, शांति व आनन्द की खोज में भारत के ऋषि-मुनियों तथा संत महात्माओं का आश्रय पा रहे हैं औ एक हम हैं.... जो उनके सिद्धान्तहीन आचरणों का अनुसरण करते हुए महापुरुषों के विरोध द्वारा अपने ही पैरों पर अपने ही हाथों से कुल्हाड़ी मार रहे हैं।

आज समाज और राष्ट्र अपनी अधोगति की सीमा पर खड़े हमें ललकार रहे हैं कि 'ओ चन्द रुपयों के पीछे अपनी जिन्दगी बेचने वालों....! भारत की सनातन संस्कृति पर पश्चिम की नग्नता का प्रहार करने वालों....! मांसलता और मादकता की धुन पर थिरक कर अपने चरित्र को भ्रष्ट करने वालों... ओ संतों के निन्दकों....! ओ भारतमाता के हत्यारो....! जरा संतों की महिमा को तो पहचानो। उठाओ इतिहास और झाँक कर देखो उसके पन्नों में और तलाशो कि एक हजार बरस की लम्बी गुलामी के दौरान विदेशी आक्रान्ताऔं के बर्बरतापूर्वक किये गये एक से बढ़कर एक भीषण आक्रमणों व अत्याचारों के बाद भी सभी प्राचीन उदात्तता, नैतिकता और आध्यात्मिकता का जन्मस्थान रहा यह भारत और उच्चादर्शों से युक्त इसकी पावन संस्कृति यदि नहीं मिटी है तो उसके पीछे किसका हाथ है?

यह है इस देश में विचरण करने वाले इन्हीं देवतुल्य ऋषिगणों, सदगुरुओं व महापुरुषों की करुणाकृपा का फल है जिनके वेदान्ती ज्ञान ने अनेकानेक प्रतिकूलताओं के बाद भी समग्र राष्ट्र को एकता के सूत्र में पिरोये रखा। यह देश इन ऋषियों के ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकता।

बड़ी विचित्रता है कि कुछ निहित स्वार्थी असामाजिक तत्त्वों को उन्नत जीवन अपनाने और अज्ञान से परे रहने की ऐसी आध्यात्मिक प्रवृत्तियाँ पसन्द नहीं हैं। जनता की श्रद्धा को ठेस पहुँचाने वाले और अपने स्वार्थ के लिए अनेक लोगों का अकल्याण करने वाले ये हीन स्वभाव के

व्यक्ति अन्य जनों को सत्य पंथ से विचलित करते हैं। ये लोग अपना उल्लू सीधा करने के लिए अपनी मर्जी के मुताबिक असत्यों का फैलाव करने में तनिक भी नहीं शरमाते।

जिन्होंने सनातन धर्म के साहित्य को बड़े सेवाभाव से और अति अल्प मूल्य में, देश-परदेश में घर-घर पहुँचाया है ऐसे परोपकार मूर्ति, गीताप्रेस (गोरखपुर) के जीवनदाता श्री जयदयालजी और श्री हनुमान प्रसाद जी पोद्दार (भाई जी) जैसे पवित्र आत्माओं के लिए भी कुछ का कुछ बकने वाले लोग बकते रहते थे।

ऐसे दुष्टों की वंश परम्परा संसार में बढ़ती ही रहती है। उनके लिए महात्मा ईसा के शब्दों में हम इतना ही कह सकते हैं - "हे परम पिता! तू इन्हें क्षमा कर क्योंकि वे नहीं जानते कि स्वयं क्या कर रहे हैं।"

(अनुक्रम)

विकास के वैरियों से सावधान!

कपिलवस्तु के राजा शुद्धोदन का युवराज था सिद्धार्थ! यौवन में कदम रखते ही विवेक और वैराग्य जाग उठा। युवान पत्नी यशोधरा और नवजात शिशु राहुल की मोह-ममता की रेशमी जंजीर काटकर महाभीनिष्क्रमण (गृहत्याग) किया। एकान्त अरण्य में जाकर गहन ध्यान साधना करके अपने साध्य तत्त्व को प्राप्त कर लिया।

एकान्त में तपश्चर्या और ध्यान साधना से खिले हुए इस आध्यात्मिक कुसुम की मधुर सौरभ लोगो में फैलने लगी। अब सिद्धार्थ भगवान बुद्ध के नाम से जन-समूह में प्रसिद्ध हुए। हजारों हजारों लोग उनके उपदिष्ट मार्ग पर चलने लगे और अपनी अपनी योग्यता के मुताबिक आध्यात्मिक यात्रा में आगे बढ़ते हुए आत्मिक शांति प्राप्त करने लगे। असंख्य लोग बौद्ध भिक्षुक बनकर भगवान बुद्ध के सान्निध्य में रहने लगे। उनके पीछे चलने वाले अनुयायीओं का एक संघ स्थापित हो गया। चहुँ ओर नाद गूँजने लगे किः

बुद्धं शरणं गच्छामि।
धम्मं शरणं गच्छामि।
संघं शरणं गच्छामि।

श्रावस्ती नगरी में भगवान बुद्ध का बहुत यश फैला। लोगों में उनकी जय-जयकार होने लगी। लोगों की भीड़-भाड़ से विरक्त होकर बुद्ध नगर से बाहर जेतवन में आम के बगीचे में रहने लगे। नगर के पिपासु जन बड़ी तादाद में वहाँ हररोज निश्चित समय पर पहुँच जाते और उपदेश-प्रवचन सुनते। बड़े-बड़े राजा महाराजा भगवान बुद्ध के सान्निध्य में आने जाने लगे।

समाज में तो हर प्रकार के लोग होते हैं। अनादि काल से दैवी सम्पदा के लोग एवं आसुरी सम्पदा के लोग हुआ करते हैं। बुद्ध का फैलता हुआ यश देखकर उनका तेजोद्वेष करने

वाले लोग जलने लगे। संतों के साथ हमेशा से होता आ रहा है ऐसे उन दुष्ट तत्त्वों ने बुद्ध को बदनाम करने के लिए कुप्रचार किया। विभिन्न प्रकार की युक्ति-प्रयुक्तियाँ लड़ाकर बुद्ध के यश को हानि पहुँचे ऐसी बातें समाज में वे लोग फैलाने लगे। उन दुष्टों ने अपने षड्यंत्र में एक वेश्या को समझा-बुझाकर शामिल कर लिया।

वेश्या बन-ठनकर जेतवन में भगवान बुद्ध के निवास-स्थानवाले बगीचे में जाने लगी। धनराशि के साथ दुष्टों का हर प्रकार से सहारा एवं प्रोत्साहन उसे मिल रहा था। रात्रि को वहीं रहकर सुबह नगर में वापिस लोट आती। अपनी सखियों में भी उसने बात फैलाई।

लोग उससे पूछने लगेः "अरी! आजकल तू दिखती नहीं है? कहाँ जा रही है रोज रात को?"

"मैं तो रोज रात को जेतवन जाती हूँ। वे बुद्ध दिन में लोगों को उपदेश देते हैं और रात्रि के समय मेरे साथ रंगरेलियाँ मनाते हैं। सारी रात वहाँ बिताकर सुबह लोटती हूँ।"

वेश्या ने पूरा स्त्रीचरित्र आजमाकर षड्यंत्र करने वालों का साथ दिया. लोगों में पहले तो हलकी कानाफूसी हुई लेकिन ज्यों-ज्यों बात फैलती गई त्यों-त्यों लोगों में जोरदार विरोध होने लगा। लोग बुद्ध के नाम पर फिटकार बरसाने लगे। बुद्ध के भिक्षुक बस्ती में भिक्षा लेने जाते तो लोग उन्हें गालियाँ देने लगे। बुद्ध के संघ के लोग सेवा-प्रवृत्ति में संलग्न थे। उन लोगों के सामने भी उँगली उठाकर लोग बकवास करने लगे।

बुद्ध के शिष्य जरा असावधान रहे थे। कुप्रचार के समय साथ ही साथ सुप्रचार होता तो कुप्रचार का इतना प्रभाव नहीं होता। शिष्य अगर निष्क्रिय रहकर सोचते रह जायें कि 'करेगा सो भरेगा... भगवान उनका नाश करेंगे..' तो कुप्रचार करने वालों को खुल्ला मैदान मिल जाता है।

संत के सान्निध्य में आने वाले लोग श्रद्धालू, सज्जन, सीधे सादे होते हैं, जबकि दुष्ट प्रवृत्ति करने वाले लोग कुटिलतापूर्वक कुप्रचार करने में कुशल होते हैं। फिर भी जिन संतों के पीछे सजग समाज होता है उन संतों के पीछे उठने वाले कुप्रचार के तूफान समय पाकर शांत हो जाते हैं और उनकी सत्प्रवृत्तियाँ प्रकाशमान हो उठती हैं।

कुप्रचार ने इतना जोर पकड़ा कि बुद्ध के निकटवर्ती लोगों ने 'त्राहिमाम्' पुकार लिया। वे समझ गये कि यह व्यवस्थित आयोजनपूर्वक षड्यंत्र किया गया है। बुद्ध स्वयं तो पारमार्थिक सत्य में जागे हुए थे। वे बोलतेः "सब ठीक है, चलने दो। व्यवहारिक सत्य में वाहवाही देख ली। अब निन्दा भी देख लें। क्या फर्क पड़ता है?"

शिष्य कहने लगेः "भन्ते! अब सहा नहीं जाता। संघ के निकटवर्ती भक्त भी अफवाहों के शिकार हो रहे हैं। समाज के लोग अफवाहों की बातों को सत्य मानने लग गये हैं।"

बुद्धः "धैर्य रखो। हम पारमार्थिक सत्य में विश्रांति पाते हैं। यह विरोध की आँधी चली है तो शांत भी हो जाएगी। समय पाकर सत्य ही बाहर आयेगा। आखिर में लोग हमें जानेंगे और मानेंगे।"

कुछ लोगों ने अगवानी का झण्डा उठाया और राज्यसत्ता के समक्ष जोर-शोर से माँग की कि बुद्ध की जाँच करवाई जाये। लोग बातें कर रहे हैं और वेश्या भी कहती है कि बुद्ध रात्रि को मेरे साथ होते हैं और दिन में सत्संग करते हैं।

बुद्ध के बारे में जाँच करने के लिए राजा ने अपने आदमियों को फरमान दिया। अब षड्यंत्र करनेवालों ने सोचा कि इस जाँच करने वाले पंच में अगर सच्चा आदमी आ जाएगा तो अफवाहों का सीना चीरकर सत्य बाहर आ जाएगा। अतः उन्होंने अपने षड्यंत्र को आखिरी पराकाष्ठा पर पहुँचाया। अब ऐसे ठोस सबूत खड़ा करना चाहिए कि बुद्ध की प्रतिभा का अस्त हो जाये।

उन्होंने वेश्या को दारु पिलाकर जेतवन भेज दिया। पीछे से गुण्डों की टोली वहाँ गई। वेश्या पर बलात्कार आदि सब दुष्ट कृत्य करके उसका गला घोंट दिया और लाश को बुद्ध के बगीचे में गाड़कर पलायन हो गये।

लोगों ने राज्यसत्ता के द्वार खटखटाये थे लेकिन सत्तावाले भी कुछ लोग दुष्टों के साथ जुड़े हुए थे। ऐसा थोड़े ही है कि सत्ता में बैठे हुए सब लोग दूध में धोये हुए व्यक्ति होते हैं।

राजा के अधिकारियों के द्वारा जाँच करने पर वेश्या की लाश हाथ लगी। अब दुष्टों ने जोर-शोर से चिल्लाना शुरु कर दिया।

"देखो, हम पहले ही कह रहे थे। वेश्या भी बोल रही थी लेकिन तुम भगतड़े लोग मानते ही नहीं थे। अब देख लिया न? बुद्ध ने सही बात खुल जाने के भय से वेश्या को मरवाकर बगीचे में गड़वा दिया। न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी। लेकिन सत्य कहाँ तक छिप सकता है? मुद्दामाल हाथ लग गया। इस ठोस सबूत से बुद्ध की असलियत सिद्ध हो गई। सत्य बाहर आ गया।"

लेकिन उन मूर्खों का पता नहीं कि तुम्हारा बनाया हुआ कल्पित सत्य बाहर आया, वास्तविक सत्य तो आज ढाई हजार वर्ष के बाद भी वैसा ही चमक रहा है। आज बुद्ध को लाखों लोग जानते हैं, आदरपूर्वक मानते हैं। उनका तेजोद्वेष करने वाले दुष्ट लोग कौन-से नरकों में जलते होंगे क्या पता!

(अनुक्रम)

दिव्य दृष्टि

जब राम को बनवास जाने का मौका आया तब सीता भी उनके साथ चलने को तैयार हो गई। उस समय ऋषि बोलेः "सीते! तुम वन में मत जाना और यदि जाना ही है, तो अपने आभूषण पहनकर जाना।"

उस समय देवांग नाम के एक नागरिक ने कहाः

"आप ऐसी राय क्यों देते हैं? आप तो वन में विचरण करने वाले ऋषि हैं। आपको गृहस्थ जीवन में इस प्रकार रुचि लेने की क्या आवश्यकता है?"

वशिष्ठजी ने इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया और अपना आग्रह जारी रखा। यह देखकर देवांग उनके विषय में अनाप-शनाप बकता रहा। यह बात सर्वविदित है कि सीता आभूषण पहनकर वन में गई। वहाँ संकेत देने के लिए और राम को संदेश देने के लिए सीता की अंगूठी, केयूर (भुजदण्ड), कुण्डल और अन्य आभूषण किस प्रकार काम आये यह देखकर वशिष्ठजी की दीर्घदृष्टि की वन्दना किये बिना नहीं रहा जाता। लेकिन कुप्रचार फैलाने वाले अभागों ने महर्षि वशिष्ठ की निन्दा करने में कोई कमी नहीं रखी। योगवाशिष्ठ महारामायण में वशिष्ठजी महाराज ने कहाः "हे रामजी! मूर्ख लोग क्या-क्या बकते हैं, मुझे सब पता है लेकिन हमारा उदार स्वभाव है। हम क्षमा करते हैं। हे रघुनन्दन! संतों के गुणदोष न विचारना लेकिन उनकी युक्ति लेकर संसारसागर से तर जाना।"

संत का वन में रहना अच्छा है किन्तु विनोबाजी के कथनानुसारः "यदि सभी संत वन में बस जाएँ तो इस संसार की क्या हालत हो जाए? संतों को स्वार्थी नहीं बनना चाहिए। उनको अपने ज्ञान और प्रकाश का लाभ संसार को देना ही चाहिए। इस काम में यदि उनको थोड़ा कष्ट सहना पड़े, संसार का हल्ला-दंगा सहना पड़े तो भी उनको उसकी परवाह नहीं करनी चाहिए।"

संतजन संसार के झगड़ों का समाधान अपने तटस्थ भाव से कर सकते हैं। संसार के लोगों को संतों के वचन की अवगणना करना कठिन होगा। जो काम न्यायालय में फँसा हो, उसे संतजन एक पल में निपटा देते हैं। संत की शीतल वाणी संसारी लोगों के जले-गले हृदय पर विलक्षण प्रकार की शान्ति देती है। ऐसे संत इस नरकागार जैसे संसार में तीर्थधाम तुल्य है।

(अनुक्रम)

जीवन की सार्थकता

अनेक वर्ष पूर्व मानो अदृष्ट से सत्य की एक किरण मिली थीः "जीवन है, तो उसमें जख्म तो होने ही वाले हैं और संग्राम है इसलिए उसमें कुछ कष्ट तो उठाना ही पड़ेगा। इन विषमताओं के बीच भावनाशीलता, श्रद्धा और पुरुषार्थ का दीपक न बुझ जाए यह ध्यान रखते हुए हमें चिर विकास की पगडंडी पर निरन्तर गतिमान बनना है।"

हमें तो केवल प्रकाश ही ग्रहण करना चाहिए। अन्धकार का सम्पूर्ण अनादर करते हुए जीवन को धन्य बनाने के लिए निरन्तर आगे बढ़ना चाहिए। इस संसार-वाटिका में कण्टकों और कुसुमों की कमी नहीं है। जिस किसी सुमन में रंग, सौरभ, आर्द्रता, कोमलता और पावनता मिले, उसकी पूजा करनी चाहिए। कुप्रचार और अफवाहों का शिकार बनकर मानव जीवन बरबाद नहीं करना चाहिए। अपितु संतों के दैवी कार्यों में साझीदार बनकर अपनी इक्कीस पीढ़ीयों का कल्याण करना चाहिए।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

नर नहीं वह जन्तु है, जिस नर को धर्म का मान नहीं।
व्यर्थ है वह जीवन जिसमें आत्मतत्त्व का ज्ञान नहीं।।
चाँदी के चन्द टुकड़ों पर अपनी ज़िन्दगी बेचने वालों !
मुर्दा है वह देश जहाँ पर संतों का सम्मान नहीं।।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

(अनुक्रम)